वेद में पुनर्जन्म

★ श्री पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

प्रतार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य, अधच्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ (ऋग्वेद १०।५६।१)

प्रतारि—आगे को जारी रहे ।
आयुः—जीवन ।
प्रतरं—लम्बा, दीर्घ ।
नवीयः—नया ।
स्थातारा इव—रथ पर चढ़े हुए दो यात्रियों के समान ।
रथस्य—रथ के ।
क्रतुमता—चलाने वाले के द्वारा ।
अध (अथ)–तत्पश्चात् ।
च्यवानः—शरीर त्यागने वाला जीव ।
उत् तवीति—प्राप्त करती है ।
अर्थं—उद्देश्य ।
परातरं—बहुत दूर ।
निर्ऋतिः—त्रुटि, निर्बलता ।
जिहीताम्—छूट जावे ।

जो जीव आज मर रहा है अर्थात् शरीर त्याग रहा है वह पुनर्जन्म लेकर नवीन दीर्घ जीवन प्राप्त करे । जिस प्रकार अच्छा रथ चलाने वाला रथ को इस प्रकार चलाता है कि यात्रियों की यात्रा बाधा-रहित होकर आगे बढ़ती जावे, इसी प्रकार ईश्वर की व्यवस्था से मरने वाले की अगली यात्रा निर्विघ्न हो, जिससे मरने वाले को भिन्न-भिन्न जन्म लेने का उद्देश्य पूरा हो जावे । पुनर्जन्म का उद्देश्य यह है कि जीव की अन्तर्निहित कमजोरियाँ या त्रुटियाँ दूर हों और उसको पूर्णता प्राप्त हो सके । ये त्रुटियां एक जन्म में नहीं छूट सकतीं, जन्म-जन्मान्तर चाहियें ।

सामन् नु राये निधिमन् न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि, ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥२॥ (ऋ० १०।५६।२)

सामन् (साम्नि)—हमारी प्रार्थनाओं में ।
नु—अवश्य ।
राये—सुख के लिए ।
निधिमत्—भरपूर ।
नु—अवश्य ।
अन्नम्—भोजन ।
करामहे—हम प्राप्त करें ।
सु—अच्छे प्रकार ।
पुरुध—बहुत ।
श्रवांसि—जीवन की आवश्यक वस्तुएँ ।
नः—हमारा ।
जरिता—मरने वाला सम्बन्धी ।
ता विश्वानि—उन सबको ।
ममत्तु—भोगे ।
परातरं—बहुत दूर ।
निर्ऋतिः—हमारी त्रुटियाँ ।
जिहीताम्—छूट जावें ।

जो हमारा बन्धु आज प्राण त्याग कर रहा है उसका हमारी शुभकामनाएँ दूसरे जन्म में कल्याण करें । भोजन पुष्कल हो, हमारे द्वारा उत्पन्न जीवन के उपभोग उसे प्राप्त हों । यह मृत पुरुष दूसरे जन्म में सब पदार्थों का उपभोग करे, उसकी त्रुटियाँ दूर हों । अर्थात् इस जन्म विकास में जो कमियाँ रह गई हैं उनको वह दूसरे जन्म में पूरा करे । तात्पर्य यह है कि हम जीवित लोग आपके मानसिक तथा शारीरिक साधनों से इस लोक को अन्न तथा विद्या द्वारा सुसम्पन्न करते हैं । यह

मरने वाला पुरुष फिर हमारे बीच में जन्म लेगा और हमारे जुटाये हुए साधनों का उपभोग करके उत्तरोत्तर विकास करेगा ।

अभीष्वर्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्नभूमिं गिरयो नाज्रान् । स नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं तु निर्ऋ तिर्जिहीताम् ॥ (ऋ० १०।५९।३)

पौंस्यै—पुरुषार्थों द्वारा ।
अर्यः—बाधाओं को ।
(अभि सु भवेम) जीतें ।
द्यौः न भूमिं—जैसे द्यौलोक पृथ्वी को ।
गिरयः न—जैसे पहाड़ ।
अज्रान्—नीची भूमि पर ।

स नो जरिता—वह हमारा मृत बन्धु ।
विश्वानि—इन सब बाधाओं को ।
चिकेत—समझ ले ।
परातरं—बहुत दूर ।
निर्ऋ तिः—निर्बलता में ।
सु जिहीताम्—भाग जावें ।

जीव मरने के पश्चात् दूसरे जन्म में सब प्रकार की बाधाओं पर विजय पावे जैसे द्यौलोक पृथ्वी पर या पर्वत नीची भूमि पर । वह अपनी नई जिन्दगी में इन सब परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी निर्बलताओं को हटावे और मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में उत्तरोत्तर उन्नति करे ।

मो षु णः सोम मृत्यवे परादाः पश्येम नु सूर्य-मुच्चरन्तम् । द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं तु निर्ऋ तिर्जिहीताम् ॥ (ऋ० १०।५९।४)

सोम—हे सोम ।
मा उ सु—कभी मत ।
परा दाः—सुपुर्द कर ।
मृत्यवे—मौत को ।
पश्येम—हम देखें ।
सूर्याम्—सूरज को ।
उच्चरन्तम्—चढ़ते हुए ।
द्युभिः—दिनों से ।
हितः—प्रेरित ।
जरिमा—बुढ़ापा ।
नः—हमारे लिए ।
सु अस्तु—अस्तु—अच्छा हो ।
परातरं तु—बहुत दूर ।
निर्ऋ तिः—दोष ।
जिहीताम्—छोड़ दे ।

हमको इस जन्म में शुभ दिनों को व्यतीत करते हुए बुढ़ापा प्राप्त हो और हमारे दोष हम से छूट जायें । इस जीवन की समाप्ति पर हमारा अभाव न हो, अपितु नये जन्म में फिर सूर्य के दर्शन होवें ।

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्रतिरान आयुः । रारन्धि नः सूर्य्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ (ऋ० १०।५९।५)

असुनीते—प्राणदाता ईश्वर ।
मनः—मन ।
अस्मासु—हम में ।
धारय—रख ।
जीवातवे—जीवन काल में ।
सुप्रतिर—बढ़ा ।
नः—हमारा ।
आयुः—जीवन ।
रारन्धि—प्रसन्न कर ।
सूर्यस्य ।
सन्दृशि—प्रकाश में ।
घृतेन—घी से ।
त्वं—तू ।
तन्वं—शरीर को ।
वर्धयस्व—बढ़ा ।

हे जीवन-दाता प्रभु हमारी देह में मन धारणा कराओ, कि हम जीवित रहें । हमारी आयु बढ़े । हम सूर्य्य के प्रकाश में आनन्द मनायें, हमाये शरीर को घी अर्थात् जीवन शक्ति (जीवन तत्वों) द्वारा बढ़ा ।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् । ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुच् चरन्त मनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ (ऋ० १०।५९।६)

असुनीते—हे प्राणदाता ईश्वर।
पुनः—फिर।
अस्मासु—हम में।
चक्षुः—आँख।
पुनः—फिर।
इह—यहाँ।
नः—हमको।
धेहि—धारण करा।
भोगम्—भोग।
ज्योक्—बहुत दिनों।
पश्येम—देखें।
सूर्य—सूर्य।
उच्चरन्तं—उदय होते हुए।
अनुमते—हे अनुकूल प्रभो।
ते—तेरी।
मृळया—कृपा से।
नः—हमारा।
स्वस्ति—कल्याण हो।

हे जीवन की व्यवस्था करने वाले दयालु प्रभु, हमको दूसरे जन्म में आँख, प्राण तथा अन्य भोग प्रदान करो। हम दीर्घ काल तक सूर्य्य को उदय होते देखें। आपकी कृपा से हमारा कल्याण हो।

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्। पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥ (ऋ० १०।५९।७)

पुनः—फिर।
नः—हम को।
असुं—प्राण।
पृथिवी—भूमि।
ददातु—देवे।
पुनः—फिर।
द्यौः देवीं—दिव्य द्यौलोक।
पुनः—फिर।
अन्तरिक्षं—अन्तरिक्ष लोक।
पुनः—फिर।
नः—हमको।
सोमः—दयालु परमात्मा।
तन्वं—शरीर को।
ददातु—देवे।
पुनः—फिर।
पूषा—जगत् का पालक ईश्वर।
पथ्यां—मार्ग या वाणी।
या—जो।
स्वस्तिः—कल्याण।

पृथिवी, द्यौ तथा अन्तरिक्ष तीनों लोकों की शक्तियाँ मिलकर हमको नया जीवन और नया शरीर देवें। दयालु और संसार का पालक परमात्मा पुनर्जन्म देकर हमारा मार्ग प्रदर्शन करे और हम वाणी या वेद विद्या को प्राप्त करके जीवनोद्देश्य की प्राप्ति करें।

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा। भरतामप यद् रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किंचनाममत् ॥ (ऋ० १०।५९।८)

शं—कल्याणकारी।
रोदसी—द्यौ और पृथिवी।
सुबन्धवे—प्यारे बन्धु के लिए।
यह्वी—शक्तिशाली।
ऋतस्य—ऋत या अटल व्यवस्था की।
मातरा—मातायें, निर्मातायें।
भरताम् अप—दूर हो।
यद्—जो।
रपः—अनिष्ट।
द्यौः—द्यौलोक।
पृथिवि—भूमि।
क्षमा—यह लोक।
रपः—अनिष्ट।
मा उ—न।
षु—अच्छा।

ते—तेरे लिये।

किंचन—कुछ भी।

आममत्—कष्ट दे।

जिस हमारे बन्धु की आज मृत्यु हो रही है उसको अटल व्यवस्था के पोषक यह लोक और परलोक हर प्रकार से कल्याणकारी होवें। इन दोनों लोकों में जो कुछ अनिष्ट हो वह सब इससे दूर हो जाय। कोई कष्ट इसको न पहुँचे। अर्थात् अगला जन्म शुभ हो।

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा। क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद् रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किंचनाममत्॥ (ऋ० १०।५९।९)

दिवः—द्यौ लोक से या दैवी व्यवस्था से।

भेषजा—दवाइयाँ।

अव क्षरन्ति—टपकती हैं।

द्वके—दो दो करके।

त्रिका—तीन तीन करके।

क्षमा—पृथ्वी पर।

चरिष्णु—चलते हुए।

एककं—एक एक करके।

अप भरताम्—दूर होवे।

यद्—जो।

रपः—अनिष्ट।

द्यौः पृथिवि क्षमा—भूमि, द्यौलोक और जगत् में रपः—अनिष्ट।

किंचन—कुछ भी।

ते—तुझ को।

मा—नहीं।

आममत्—सतावे।

जीव मरकर जो पुनर्जन्म में इस संसार में आता है तो संसार की अपेक्षा से तो केवल यह एक पार्थिव क्रिया है, परन्तु ईश्वर की व्यवस्था में मानसिक, आध्यात्मिक तथा अनेक प्रकार के विकास के कार्य अधिनिहित हैं। शारीरिक विकास तो साधन मात्र और गौण है। आध्यात्मिक विकास ही वास्तविक उद्देश्य है। मरने वाले आत्मा का दूसरे जन्म में आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक कोई भी अनिष्ट न हो।

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः। भरतामप यद् रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किंचनाममत्॥ (ऋ० १०।५९।१०)

इन्द्र—हे ईश्वर!

संप्रेरय—प्रेरणा कर।

गां—बैल को।

अनड्वाहं—गाड़ी को खींचने वाले को।

यः—जो।

आवहत्—ढोता है।

उशीनराण्याः—उशीनर या सौभाग्य की।

अनः—गाड़ी।

भरताम् अप—दूर हो।

यद्—जो।

रपः—अनिष्ट।

द्यौः—द्यौ लोक।

पृथिवि—भूमि।

क्षमा—संसार।

रपः—अनिष्ट।

मा—नहीं।

सु—अच्छी।

ते—तुझे।

किंचन—कुछ भी।

आममत्—कष्ट दे।

यह मरने वाला पुरुष जब दूसरा जन्म ले तो इसके सौभाग्य की गाड़ी ईश्वर की दया से भली प्रकार चले। ऐहिक, दैविक तथा अन्य सभी प्रकार के सन्ताप इसको न सतावें।

मन्त्र १

ऋतुमता रथस्य स्थातारा (स्थातारौ) इव।

'रथ' शब्द 'रम्' धातु से बना है। रमण करने वाला। अर्थात् जीवन-प्रवाह या सृष्टि प्रवाह।

'ऋतुमता' (ऋतुमान् द्वारा) 'ऋतुमान्' पर-

मात्मा है जो जीवन-रथ का सञ्चालन करता है।

(स्थातारौ) बैठने वाले सृष्टि रचना में दो वस्तुएँ हैं। एक व्यक्ति, दूसरा समष्टि। प्रत्येक घटना में दो उद्देश्य निहित रहते हैं। एक तो व्यक्तिगत प्रत्येक 'जीव' का। यह सृष्टि ही जीव के लिए है। परन्तु 'जीव' तो नाना हैं। अतः 'समष्टि' की व्यवस्था पर ही व्यक्ति की उन्नति आश्रित है। इस बात को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

देश की एक सरकार है। उसमें सहस्रों कार्यकर्ता हैं। कल्पना कीजिए कि सरकार मोहनलाल व्यक्ति को किसी अच्छे काम के पुरस्कार के रूप में २००) मासिक से २५०) मासिक के पद पर भेज देती है। दो सौ से ढाई सौ की उन्नति में केवल मोहनलाल का ही हित दृष्टि में नहीं है। सरकार का ध्यान समस्त शासन-यन्त्र पर है। बदली करते समय वह ध्यान रखती है कि मोहनलाल की पदोन्नति इस प्रकार की जाय कि शासन की मशीन के चलने में बाधा न पड़े। मशीन में अनेक छोटे बड़े पुर्जे लिपटे हैं। प्रत्येक पुर्जे की श्रेष्ठता उपादेय होती है परन्तु साथ ही सम्पूर्ण मशीन की श्रेष्ठता का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार समष्टि और व्यष्टि दोनों की उत्तमता ही सञ्चालक की दृष्टि में रहती है।

पुनर्जन्म यद्यपि जीव के वैयक्तिक कर्मों के कारण होता है और अगले जन्म का उद्देश्य है उस जीव का भावी विकास। परन्तु समस्त संसार चक्र का महत्त्व भी ध्यान में रहता है।

इस प्रकार चार अङ्ग आ गये। रथ का संचालक, रथ के दो यात्री या सवार। रथ सृष्टि का समष्टि रूप है। सञ्चालक ईश्वर है। दो उद्देश्य हैं रथ के दो यात्री। अर्थात् मशीन भी ठीक रहे और प्रत्येक पुर्जा भी ठीक रहे।

जीव क्यों मरता है और क्यों दूसरा जन्म लेता है। जीव का वर्तमान जन्म क्यों हुआ? जीव है अल्प। उसके तीन गुण हैं। कर्तृत्व-ज्ञातृत्व-भोक्तृत्ववान् अणुः। अर्थात् 'जीव' वह अणु (न कि विभु) सत्ता है जिसमें जानने, करने और भोगने की शक्ति पाई जाय और इन शक्तियों का विकास उद्दिष्ट हो। हर जीव कुछ जानता है। परन्तु ज्ञान सदा घटता बढ़ता रहता है। इसी प्रकार कर्म और भोग की शक्तियों को भी समझना चाहिये।

इन शक्तियों के विकास के लिए भौतिक शरीर चाहिए। यही 'जन्म' है, यही योनि है। भिन्न-भिन्न योनियों में इन तीनों अर्थात् कर्म, ज्ञान, भोग के स्तर भिन्न-भिन्न हैं। एक जन्म में आंशिक विकास ही सम्भव है। आयु थोड़ी होती है, आयु की व्यवस्था के साधन ही अल्प हैं। अतः दीर्घ जीवन की भी आवश्यकता है और जीवनों की भी।

शरीर में दो प्रकार की इन्द्रियाँ हैं। ज्ञान-इन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा) और हाथ, पैर, वाक्, पायु, उपस्थ, आदि कर्म-इन्द्रियाँ। भोग-इन्द्रियाँ अलग नहीं है। यही कर्म और ज्ञान-इन्द्रियाँ भोग का भी साधन बन जाती है। आँख से फूल को देखिये। ज्ञान भी बढ़ेगा और आनन्द भी होगा। पैरों से दौड़िये, कर्म भी होगा और आनन्द भी। अतः प्रत्येक (जन्म अर्थात् शरीर और शरीरी 'जीव' का सम्बन्ध) जीव के तीनों गुणों (कर्तृत्व, भोक्तृत्व ज्ञातृत्व) के विकास में सहायक होता है।

जब एक जन्म में यह विकास के साधन समाप्त हो जाते हैं तो उस शरीर के त्याग और दूसरे शरीर के ग्रहण की आवश्यकता पड़ती है।

इसको एक दृष्टान्त द्वारा समझिये। माता बच्चे को एक स्तन पिला रही है। उस स्तन का दूध समाप्त हो गया। माता ने बच्चे का मुँह उस स्तन से हटाकर दूसरे स्तन में लगा दिया। बच्चा रोता है। इसलिए कि दूध छूट रहा है। परन्तु दूसरा स्तन मुँह में आते ही रोना भूल जाता है। इसी प्रकार जब आदमी मरता है तो वर्तमान

योनि को छोड़ते हुए रोता है। परन्तु दूसरी योनि प्राप्त करते ही उस को नई योनि से प्रेम हो जाता है और पुरानी योनि की याद भूल जाती है।

निर्ऋतिः जिहीताम्।

'ऋतिः' का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान से वह शक्ति प्राप्त होती है कि मनुष्य कर्तव्य का निर्भीकता से पालन करता है। 'निर्ऋतिः' "ऋतिः" का विपर्यय है, अर्थात् वह निर्बलताएँ जिनके कारण मनुष्य प्रलोभनों से न लड़ सके और पाप में प्रवृत्त हो।

दूसरा जन्म दिया ही इसलिए जाता है कि पहले जन्म में जो कमजोरियाँ (शक्ति-हीनताएँ) शेष रह गईं वह दूर हो जायें। पाठशाला की भिन्न-भिन्न कक्षाओं पर विचार कीजिये। पहली कक्षा की कमजोरियाँ दूसरी कक्षा में दूर हो जाती हैं। जो उसमें भी रह जाती हैं वह किसी दूसरी कक्षा की अपेक्षा रखती हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर योनियाँ पूर्व पूर्व की योनियों के साधक होती हैं।

इस सूक्त के पहले चार मंत्रों में 'निर्ऋतिः जिहीताम्' को चार बार दुहराया गया है। तात्पर्य यह है कि हम को जो पुनर्जन्म मिले वह पहली योनियों की 'निर्ऋति' से हम को छुड़ाने वाला हो। यही पुनर्जन्म का अन्तिम उद्देश्य है। वेद-मन्त्र में इस उद्देश्य को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

"अध च्यवानः उत्तवीति अर्थम्"। 'च्यवानः' अर्थात् मरने वाला, (पुराने शरीर को छोड़ने वाला प्राणी) 'अर्थम्' या उद्देश्य को 'उत्तवीति' अर्थात् प्राप्त करता है।

'पुनर्जन्म' द्वारा 'निर्ऋति' (निर्बलता) कैसे छूटती है? पहला साधन है "आयुः नवीयः" या 'नई योनि'। पुरानी योनि के साथ कतिपय परि-स्थितियाँ सम्बद्ध थीं। वे पुराने कुसंस्कारों को उकसा देती थीं। नई योनि में उस विशेष परि-स्थितियों के बदल जाने से छुटकारा मिल जायगा। कल्पना कीजिये कि एक शराबी है। यदि उसे ऐसे स्थान में भेज दिया जाय जहाँ शराब का मिलना कठिन या असम्भव हो जाय तो शनैः २ शराब की प्रबल इच्छा कम हो जायगी। आँखों से पाप करने वाला यदि अन्धा पैदा हो तो कुसंस्कारों के आँख द्वारा प्रेरित होने की संभावना कम हो जायगी।

दूसरा साधन निर्ऋति से छुटकारे का है दूसरी योनि में जीवन के साधनों का पुष्कल होना। "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" दूसरे मन्त्र में 'राये', 'अन्नं' आदि से यही बताया गया है।

तीसरा साधन है आन्तरिक बल। क्योंकि बिना बल के साधनों का प्रयोग या उपलब्धि असम्भव है। तीसरे मंत्र में यही बताया है। अर्थात् दूसरी योनि में मरने वाले को इतना प्राबल्य प्राप्त हो कि वह ईश्वर-प्रदत्त साधनों का यथोचित प्रयोग कर सके। जैसे द्यौ लोक में ऐसी शक्ति है कि वह भूमि के पदार्थों पर आधिपत्य प्राप्त करता है या पहाड़ों की चोटियाँ बादलों से वर्षा को खींच लाती हैं। इसी प्रकार नई योनि के साधनों से यथासम्भव सभी लाभ उठाये जा सकें।

चौथे मंत्र में सोम तथा सूर्या आदि भौतिक देवताओं की सहायता अभीष्ट मानी गई है। जिस से नई योनि अल्प काल में ही मृत्यु का ग्रास न बन जाय।

इन चारों मन्त्रों में चारों साधनों का उचित प्रयोग किया जाय तो 'निर्ऋति' अर्थात् कुसंस्कारों द्वारा प्रेरित निर्बलताएँ दूर हो सकती हैं। और पुनर्जन्म का मुख्य उद्देश्य पूरा हो सकता है।

अगले तीन मन्त्रों (५, ६, ७) में नवीन योनि के अङ्गों प्रत्यंगों के बलिष्ठ होने की प्रार्थना है। 'असु' अर्थात् प्राण शक्ति, चक्षु या देखने की शक्ति जिससे सूर्य के प्रकाश का लाभ उठाया जा सके। "घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व"। घृत आदि पुष्टि-प्रद पदार्थों से भौतिक शरीर बलिष्ठ हो। और बलिष्ठ शरीर में बलिष्ठ मन की प्रेरणा से भावी विकास में सहायता मिले।

सूक्त के पिछले तीन मन्त्रों में 'अप भरतां यद्

रपः' को दुहराया जाता है। "अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते" (निरुक्त वचन) अर्थात् जो वाक्य बार बार दुहराया जाय उससे अर्थ का गौरव माना जाता है।

अगले जन्म में शक्ति तथा योग्यता होने के उपरान्त भी प्रलोभनों में फँसने और पाप करने की सम्भावना रहती है। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' अर्थात् जो शक्तिशाली है वह अत्याचार कर सकता है, बलिष्ठ शरीर वाला अकड़ कर चलता है और कमजोर आदमी को देखकर उसका जी ललचाता है कि इसका गला दबा दूँ, धनाढ्य पुरुष कुवासनाओं के शीघ्र ही शिकार हो जाते हैं, उपनिषद् में यह कथानक है कि जब प्रजापति ने उपदेश देते हुए केवल 'द' शब्द का प्रयोग किया तो देवों ने समझा कि उनको 'दाम्यत' (अपने ऊपर दमन करने) का उपदेश है। दिव्य गुणों से युक्त होने, शक्तिशाली, सम्पत्तिशाली, ज्ञानवान् होने से उनके प्रलोभनों में फँसने की अधिक सम्भावना थी, जब दूसरी नई योनि मिली तो नवीन साधनों के साथ नवीन प्रलोभनों का भी अवसर आ घटित हुआ। अतः प्रार्थना की गई है कि नया जन्म भी मिले और नई सम्पत्ति भी मिले परन्तु पाप से बचे रहें। राजा के घर में जन्म लेकर पद का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति न बने। क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो उन्नति का मार्ग बन्द होकर अवनति का मार्ग खुल जायगा। अत्याचारी राजा पुराने शुभ कर्मों के फलस्वरूप राजा बना परन्तु दुष्ट प्रवृत्तियों के फलस्वरूप उसको अधमतर योनियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं। कसाई भेड़िये बन सकते हैं। शुभ प्रवृत्तियाँ शुभ योनियों की प्रेरक हैं। कुत्सित प्रवृत्तियाँ कुत्सित प्रवृत्ति की प्रवर्तक हैं।

आइये थोड़ा-थोड़ा वैदिक शब्दों की अन्तर्निहित भावनाओं पर भी विचार करें।

आठवें मन्त्र में 'रोदसी' (द्यावा पृथिवी) को 'ऋतस्य मातरौ' (कानून कुदरत Law of Nature) की माता बताया, माता, निर्माता 'मान अथवा मर्यादा को स्थापित करने वाली शक्तियाँ' ऐसा वर्णन किया, सृष्टि नियम के अनुकूल आचरण ही श्रेष्ठता है। इसकी अवहेलना पाप है।

नवें मन्त्र में 'भेषज' अर्थात् 'ओषधियों' का उल्लेख है। 'भिषज' का अर्थ है 'अभि+सज्'। किसी क्षत स्थान में पट्टी बाँधना या लेप करना। वे सब वस्तुएँ भेषज हैं जिन से क्षति का निवारण होता है। सभी पदार्थ सभी रोगों की दवा नहीं हैं। रोग की प्रकृति के अनुसार एक दो या तीन पदार्थ मिलकर भी ओषधि (ओष+धा) या बल को देने वाले होते हैं। दूसरे जन्म के वातावरण में जीव अपने अनुकूल प्राप्त पदार्थों को अपने विकास के काम में लाता है। अन्त में लक्ष्य तो एक ही है अर्थात् पाप की प्रवृत्ति दूर रहे।

दसवें मन्त्र में 'उशानराणी' देवी की गाड़ी को ढोने का उल्लेख है। वश+नर=उशीनर अर्थात् जिससे कामनाएँ प्राप्त हों। उशीनराणी का अर्थ हुआ सौभाग्यवती देवी। (Fortune, Luck, Destiny) सौभाग्य को एक रथ वाली देवी मानकर उसके रथ को ठीक-ठीक चलाने की प्रेरणा इन्द्र से की गई है, अर्थात् परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य दूसरे जन्म में कुमार्ग से बचता हुआ सन्मार्गगामी हो सकता है। पाप की प्रवृत्ति से बचने के लिए हम पृथिवी और द्यौलोक सभी की सभी वस्तुओं की सहायता की याचना करते हैं।